भगवतीगीता

['भगवतीगीता' देवीपुराण नामक उपपुराणके अन्तर्गत समाहित है। उपपुराण होते हुए भी देवीके भक्तोंमें चिरकालसे देवीपुराणका बहुत प्रचार रहा है, सम्भवतः इसी कारण इसका एक नाम 'महाभागवत' भी है। उल्लेखनीय है कि उक्त देवीपुराण प्रसिद्ध देवीभागवतमहापुराणसे सर्वथा भिन्न एक ग्रन्थ है। देवीपुराणके अध्याय १५ से १९ तक कुल ५ अध्यायोंमें श्रीभगवतीगीता विस्तृत है। इसे 'पार्वतीगीता' भी कहा जाता है। पार्वतीजीने अपने पिता गिरिराज हिमालयके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश किया है, जिसे जाननेमात्रसे प्राणी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है, उसके लिये मुक्ति सुलभ हो जाती है। अत्यन्त सहज तथा सुबोध भाषामें निबद्ध यह गीता यहाँ सानुवाद प्रस्तुत है—]

पहला अध्याय

आद्यशक्तिका 'पार्वती' नामसे हिमालयके यहाँ प्राकट्य और दिव्य विज्ञानयोगका उपदेश

नारद उवाच

ब्रूहि देव महेशान यथा सा परमेश्वरी।
बभूव मेनकागर्भे पूर्णभावेन पार्वती॥ १॥

नारदजी बोले—महादेव! परमेश्वरी सती जिस प्रकार अपने पूर्णावतारमें पार्वतीरूपसे मेनकाके गर्भमें आयीं, उस कथाको कृपापूर्वक बतायें॥ १॥

श्रुतं बहुपुराणेषु ज्ञायतेऽपि च यद्यपि।
जन्मकर्मादिकं तस्यास्तथापि परमेश्वर॥ २॥

श्रोतुं समिष्यते त्वत्तो यतस्त्वं वेत्सि तत्त्वतः।
तद्वदस्व महादेव विस्तरेण महामते॥ ३॥

परमेश्वर! यद्यपि उन जगदम्बाके जन्म, कर्मादिकी कथा अनेक पुराणोंमें सुनी गयी है तथा ज्ञात भी है तथापि उसे मैं आपसे अच्छी तरह सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप इस वृत्तान्तको ठीक-ठीक जानते हैं। महामते! महादेव! इसलिये कृपाकर विस्तारपूर्वक वह कथा कहें॥ २-३॥

श्रीमहादेव उवाच

त्रैलोक्यजननी दुर्गा ब्रह्मरूपा सनातनी।
प्रार्थिता गिरिराजेन तत्पत्न्या मेनयापि च॥ ४॥
महोग्रतपसा पुत्रीभावेन मुनिपुङ्गव।
प्रार्थिता च महेशेन सतीविरहदुःखिना॥ ५॥
प्रययौ मेनकागर्भे पूर्णब्रह्ममयी स्वयम्।
ततः शुभदिने मेना राजीवसदृशाननाम्॥ ६॥
सुषुवे तनयां देवीं सुप्रभां जगदम्बिकाम्।
ततोऽभवत्पुष्पवृष्टिः सर्वतो मुनिसत्तम॥ ७॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! गिरिराज और उनकी पत्नी मेनाने त्रैलोक्यमाता, सनातनी और ब्रह्मरूपा दुर्गादेवीकी महान् उग्र तपस्या करके उन्हें पुत्रीरूपसे पानेकी प्रार्थना की थी। भगवान् शिवने भी सतीके विरहसे दुःखी होकर उन्हें प्राप्त करनेका अनुरोध किया था। अतः ब्रह्मरूपा जगदम्बिका स्वयं मेनाके गर्भमें आयीं। तदनन्तर देवी मेनाने शुभ दिनमें कमलके समान मुखवाली, सुन्दर प्रभावाली, जगन्माता भगवतीको पुत्रीरूपसे जन्म दिया। मुनिवर! उस समय सर्वत्र पुष्पवृष्टि होने लगी॥ ४—७॥

पुण्यगन्धो ववौ वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश।
तथाद्रिराजः श्रुत्वा तु पुत्रीं जातां शुभाननाम्॥ ८॥
तरुणादित्यकोट्याभां त्रिनेत्रां दिव्यरूपिणीम्।
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रार्धकृतशेखराम्॥ ९॥
मेने तां प्रकृतिं सूक्ष्मामाद्यां जातां स्वलीलया।
तदा हृष्टमना भूत्वा विप्रेभ्यो प्रददौ बहु॥ १०॥
धनं वासांसि च मुने दोग्ध्रीर्गाश्च सहस्रशः।
द्रष्टुं प्रतिययौ चाशु बन्धुभिः परिवारितः॥ ११॥

दसों दिशाओंमें प्रकाश फैल गया और सुगन्धित वायु बहने लगी। जब पर्वतराजने सुना कि उनके यहाँ सुन्दर कन्याने जन्म लिया है, जो करोड़ों मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्विनी, तीन नेत्रोंवाली, दिव्यस्वरूपा, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, आठ भुजाओंसे युक्त और मस्तकपर अर्धचन्द्रको धारण किये है तो उन्होंने जान लिया कि सूक्ष्मा परा-प्रकृतिने ही अपनी लीलासे उनके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। मुने! उन्होंने हर्षित होकर ब्राह्मणोंको प्रचुर धन, वस्त्र और हजारों दुधार गौएँ प्रदान कीं। तत्पश्चात् वे बन्धु-बान्धवोंसहित शीघ्र ही कन्याको देखने पहुँचे॥ ८—११॥

ततस्तमागतं ज्ञात्वा गिरीन्द्रं मेनका तदा।
प्रोवाच तनयां पश्य राजन् राजीवलोचनाम्॥ १२॥
आवयोस्तपसा जाता सर्वभूतहिताय च।
ततः सोऽपि निरीक्ष्यैनां ज्ञात्वा तां जगदम्बिकाम्॥ १३॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ कृताञ्जलिपुटः स्थितः।
प्रोवाच वचनं देवीं भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १४॥

गिरिराजको आया जानकर मेनाने उनसे कहा—राजन्! अपनी कमलनयनी पुत्रीको देखिये, ये हम दोनोंकी तपस्याका फल हैं और

सभी प्राणियोंके कल्याणहेतु प्रकट हुई हैं। तब गिरिराजने भी कन्याको देखकर उसे जगदम्बिकाके रूपमें जाना। भूमिपर सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीसे वे देवीसे कहने लगे॥ १२—१४॥

हिमालय उवाच

का त्वं मातर्विशालाक्षि चित्ररूपा सुलक्षणा।
न जाने त्वामहं वत्से यथावत्कथयस्व माम्॥ १५॥

हिमालय बोले—माता! विशालाक्षी! इस विलक्षण विचित्र रूपमें आप कौन हैं? पुत्री! मैं आपको नहीं जान पा रहा हूँ। मुझे यथावत् अपना वृत्तान्त बताइये॥ १५॥

श्रीदेव्युवाच

जानीहि मां परां शक्तिं महेश्वरकृताश्रयाम्।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिं सर्वप्रवर्तिकाम्॥ १६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशादिजननीं सर्वमुक्तिदाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्रीं जगदम्बिकाम्॥ १७॥
अहं सर्वान्तरस्था च संसारार्णवतारिणी।
नित्यानन्दमयी नित्या ब्रह्मरूपेश्वरीति च॥ १८॥
युवयोस्तपसा तुष्टा पुत्रीभावेन लीलया।
जाता तव गृहे तात बहुभाग्यवशात्तव॥ १९॥

श्रीदेवी बोलीं—परमेश्वर शिवकी आश्रिता मुझे पराशक्ति समझो। मैं सारी सृष्टिका संचालन करती हूँ तथा शाश्वत ज्ञान और ऐश्वर्यकी मूर्ति हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदिकी जन्मदात्री हूँ और सृष्टि, स्थिति, विनाशका विधान करनेवाली मुक्तिदायिनी जगदम्बिका हूँ। मैं सबकी अन्तरात्माके रूपमें स्थित हूँ और संसारसमुद्रसे उद्धार करनेवाली हूँ। मुझे नित्यानन्दमयी ब्रह्मरूपा नित्या महेश्वरी समझो। तात! तुम

दोनोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर मैंने अपनी लीलासे तुम्हारी पुत्री बनकर तुम्हारे घरमें जन्म लिया है। तुम बहुत भाग्यशाली हो॥ १६—१९ ॥

हिमालय उवाच

मातस्त्वं कृपया गृहे मम सुता जातासि नित्यापि यद्-
भाग्यं मे बहुजन्मजन्मजनितं मन्ये महत्पुण्यदम्।
दृष्टं रूपमिदं परात्परतरां मूर्तिं भवान्या अपि
माहेशीं प्रति दर्शयाशु कृपया विश्वेशि तुभ्यं नमः॥ २०॥

हिमालय बोले—माता! आपने नित्या होकर भी कृपापूर्वक मेरे घरमें पुत्रीरूपसे जन्म लिया है, यह मेरे अनेक जन्मोंमें किये पुण्योंका ही फल है तथा इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। मैंने आपका यह रूप देख लिया। अब आप परात्पर भगवतीका दिव्य शिवप्रियारूप मुझे कृपापूर्वक शीघ्र ही दिखायें। विश्वेश्वरि! आपको नमस्कार है॥ २०॥

श्रीदेव्युवाच

ददामि चक्षुस्ते दिव्यं पश्य मे रूपमैश्वरम्।
छिन्धि हृत्संशयं विद्धि सर्वदेवमयीं पितः॥ २१॥

श्रीदेवी बोलीं—पिताजी! मैं आपको दिव्य चक्षु प्रदान करती हूँ, जिनसे मेरे ऐश्वर्यशाली रूपके दर्शनकर आप अपने हृदयका संशय मिटा लीजिये और मुझे ही सर्वदेवमयी समझिये॥ २१॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा तं गिरिश्रेष्ठं दत्त्वा विज्ञानमुत्तमम्।
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं माहेश्वरं तदा॥ २२॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर गिरिराज हिमवान्‌को दिव्य दृष्टि प्रदानकर जगदम्बाने अपने अलौकिक माहेश्वरस्वरूपके दर्शन कराये॥ २२॥

शशिकोटिप्रभं चारुचन्द्रार्धकृतशेखरम्।
त्रिशूलवरहस्तं च जटामण्डितमस्तकम्॥ २३॥
भयानकं घोररूपं कालानलसहस्त्रभम्।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च नागयज्ञोपवीतिनम्॥ २४॥
द्वीपिचर्माम्बरधरं नागेन्द्रकृतभूषणम्।
एवं विलोक्य तद्रूपं विस्मितो हिमवान् पुनः॥ २५॥

उनका वह ज्योतिर्मय रूप करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभासे युक्त था, उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रकी सुन्दर लेखा विराजमान थी। उनके हाथमें श्रेष्ठ त्रिशूल और मस्तकपर जटाएँ सुशोभित हो रही थीं। हजारों कालाग्निकी आभाके समान उनका रूप भयानक और उग्र था। उनके पाँच मुख और तीन नेत्र थे तथा उन्होंने सर्पका यज्ञोपवीत धारण कर रखा था। इस प्रकार व्याघ्रचर्मको धारण किये हुए तथा श्रेष्ठ सर्पोंके आभूषणसे सुशोभित उनके उस रूपको देखकर हिमवान् बड़े चकित हुए॥ २३—२५॥

प्रोवाच वचनं माता रूपमन्यत्प्रदर्शय।
ततः संहृत्य तद्रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्॥ २६॥
रूपमन्यन्मुनिश्रेष्ठ विश्वरूपा सनातनी।
शरच्चन्द्रनिभं चारुमुकुटोज्ज्वलमस्तकम्॥ २७॥
शङ्खचक्रगदापद्महस्तं नेत्रत्रयोज्ज्वलम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥ २८॥
योगीन्द्रवृन्दसंवन्द्यं सुचारुचरणाम्बुजम्।
सर्वतः पाणिपादं च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्॥ २९॥
दृष्ट्वा तदेतत्परमं रूपं स हिमवान् पुनः।
प्रणम्य तनयां प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ३०॥

तब उनकी माँ मेनाने कहा कि मुझे अपना दूसरा रूप दिखाइये,

तब जगदम्बाने अपने उस माहेश्वररूपको तिरोहित करके तत्क्षण ही दूसरा रूप प्रकट किया। मुनिश्रेष्ठ! उन सनातनी विश्वरूपा जगदम्बाकी आभा शरत्कालके चन्द्रमाके समान थी, सुन्दर मुकुटसे उनका मस्तक प्रकाशमान था। वे हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए थीं। उनके तीन सुन्दर नेत्र थे। उन्होंने दिव्य वस्त्र, माला और गन्धानुलेप धारण कर रखा था। वे योगीन्द्रवृन्दसे वन्दनीय थीं, उनके चरणकमल अति सुन्दर थे तथा अपने हाथ, पैर, आँख, मुख, सिर आदि दिव्य विग्रहसे वे सभी दिशाओंको व्याप्त किये हुए थीं। इस प्रकारके परम अद्भुत उस रूपको देखकर हिमवान्‌ने अपनी कन्याको पुनः प्रणाम किया और विस्मयपूर्ण विकसित नेत्रोंसे उन्हें देखते हुए वे बोले— ॥ २६—३० ॥

हिमालय उवाच

मातस्तवेदं परमं रूपमैश्वरमुत्तमम्।
विस्मितोऽस्मि समालोक्य रूपमन्यत्प्रदर्शय॥ ३१ ॥
त्वं यस्य सो ह्यशोच्यो हि धन्यश्च परमेश्वरि।
अनुगृह्णीष्व मातर्मां कृपया त्वां नमो नमः॥ ३२ ॥

हिमालय बोले—माता! आपका यह श्रेष्ठ रूप भी परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न है, जिसे देखकर मैं चकित हूँ। मुझे तो कोई अन्य ही रूप दिखाइये। परमेश्वरी! आप जिसकी आश्रय हैं, वह व्यक्ति निश्चय ही अशोच्य और धन्य है। मा! कृपापूर्वक मुझपर अनुग्रह करें, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ ३१-३२॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्ता सा तदा पित्रा शैलराजेन पार्वती।
तद्रूपमपि संहृत्य दिव्यं रूपं समादधे॥ ३३ ॥

नीलोत्पलदलश्यामं वनमालाविभूषितम्।
शङ्खचक्रगदापद्ममभिव्यक्तं चतुर्भुजम्॥ ३४॥

श्रीमहादेवजी बोले—अपने पिता पर्वतराजके द्वारा ऐसा कहनेपर जगदम्बा पार्वतीने अपने उस रूपको भी समेटकर एक दिव्य रूप धारण किया। नीलकमलके समान सुन्दर श्यामवर्ण एवं वनमालासे विभूषित उस रूपकी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे॥ ३३-३४॥

एवं विलोक्य तद्रूपं शैलानामधिपस्ततः।
कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा हर्षेण महता युतः॥ ३५॥
स्तोत्रेणानेन तां देवीं तुष्टाव परमेश्वरीम्।
सर्वदेवमयीमाद्यां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्॥ ३६॥

उनके उस रूपको देखकर शैलराज हाथ जोड़कर अत्यन्त हर्षपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवस्वरूपा सर्वदेवमयी उन आदिशक्ति जगदम्बाका इस स्तोत्रसे स्तवन करने लगे—॥ ३५-३६॥

हिमालय उवाच

मातः सर्वमयि प्रसीद परमे विश्वेशि विश्वाश्रये
त्वं सर्वं नहि किञ्चिदस्ति भुवने तत्त्वं त्वदन्यच्छिवे।
त्वं विष्णुर्गिरिशस्त्वमेव नितरां धातासि शक्तिः परा
किं वर्ण्यं चरितं त्वचिन्त्यचरिते ब्रह्माद्यगम्यं मया॥ ३७॥

हिमालय बोले—माता! आप प्रसन्न हों, आप परम शक्ति हैं, आपमें सब कुछ सन्निहित है, आप ही इस चराचर जगत्‌की अधिष्ठात्री और परम आश्रय हैं। शिवे! आप ही सब कुछ हैं, इस त्रिभुवनमें आपके अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व विद्यमान नहीं है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं और आप ही पराशक्ति हैं। आपकी अचिन्त्य

लीलाका वर्णन मैं कैसे करूँ? जिसका ब्रह्मादि भी पार नहीं पा सकते॥ ३७॥

त्वं स्वाहाखिलदेवतृप्तिजननी विश्वेशि त्वं वै स्वधा
पितॄणामपि तृप्तिकारणमसि त्वं देवदेवात्मिका।
हव्यं कव्यमपि त्वमेव नियमो यज्ञस्तपो दक्षिणा
त्वं स्वर्गादिफलं समस्तफलदे देवेशि तुभ्यं नमः॥ ३८॥

विश्वेश्वरी! आप ही स्वाहारूपसे सभी देवताओंकी तृप्तिकारिका, स्वधारूपसे पितरोंकी तृप्तिका कारण और महादेवप्रिया हैं। आप ही हव्य और कव्य हैं। आप ही नियम, यज्ञ, तप और दक्षिणा हैं। आप ही स्वर्गादि लोकोंको प्रदान करनेवाली हैं तथा समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेमें आप ही समर्थ हैं। महादेवी! आपको प्रणाम है॥ ३८॥

रूपं सूक्ष्मतमं परात्परतरं यद्योगिनो विद्यया
शुद्धं ब्रह्ममयं वदन्ति परमं मातः सुदृप्तं तव।
वाचा दुर्विषयं मनोऽतिगमपि त्रैलोक्यबीजं शिवे
भक्त्याहं प्रणमामि देवि वरदे विश्वेश्वरि त्राहि माम्॥ ३९॥

माता! जिस आपके परसे भी परतर सूक्ष्मतम रूपका योगिजन शुद्ध ब्रह्मके रूपमें वर्णन करते हैं, शिवे! वह आपका मोहक रूप मन और वाणीके लिये अगम्य और त्रैलोक्यका मूल कारण है। वरदायिनी भगवती! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। विश्वेश्वरी! मेरी रक्षा करें॥ ३९॥

उद्यत्सूर्यसहस्रभां मम गृहे जातां स्वयं लीलया
देवीमष्टभुजां विशालनयनां बालेन्दुमौलिं शिवाम्।
उद्यत्कोटिशशाङ्ककान्तिनयनां बालां त्रिनेत्रां परां
भक्त्या त्वां प्रणमामि विश्वजननीं देवि प्रसीदाम्बिके॥ ४०॥

जगदम्बे! आप सहस्रों उदीयमान सूर्योंके समान आभावाली, आठ

भुजाओंसे युक्त, विशाल नेत्रोंवाली एवं मस्तकपर चन्द्ररेखासे सुशोभित हैं तथा आप कल्याणकारिणीने लीलापूर्वक स्वयं ही मेरे घरमें जन्म लिया है। उदीयमान करोड़ों चन्द्रमाओंकी शीतल कान्तिसे युक्त नयनोंवाली, त्रिनेत्रा, बालस्वरूपा आप भगवती जगन्माताको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ, आप प्रसन्न हों॥ ४०॥

रूपं ते रजताद्रिकान्तिविमलं नागेन्द्रभूषोज्ज्वलं
घोरं पञ्चमुखाम्बुजत्रिनयनैर्भीमैः समुद्भासितम्।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकं धृतजटाजूटं शरण्ये शिवे
भक्त्याहं प्रणमामि विश्वजननि त्वां त्वं प्रसीदाम्बिके॥ ४१॥

शिवे! आपका रूप चाँदीके पर्वतकी कान्तिके समान उज्ज्वल है, आपने सर्पराजका सुन्दर आभूषण धारण किया है। दुर्जनोंके लिये भय उत्पन्न करनेवाले पाँच मुखकमलों और भयानक तीन नयनोंसे आप सुशोभित हैं। अर्धचन्द्रसहित जटाजूटको आपने मस्तकपर धारण कर रखा है। शरणदात्री विश्वजननी! आपको भक्तिपूर्वक मैं प्रणाम करता हूँ। अम्बिके! आप प्रसन्न हों॥ ४१॥

रूपं शारदचन्द्रकोटिसदृशं दिव्याम्बरं शोभनं
दिव्यैराभरणैर्विराजितमलं कान्त्या जगन्मोहनम्।
दिव्यैर्बाहुचतुष्टयैर्युतमहं वन्दे शिवे भक्तितः
पादाब्जं जननि प्रसीद निखिलब्रह्मादिदेवस्तुते॥ ४२॥

भवानी! कोटिशरच्चन्द्रके समान उज्ज्वल रूप और दिव्य वस्त्राभरणोंसे आप सुशोभित हैं। आपका जगन्मोहनरूप चार दिव्य भुजाओंसे युक्त है, ब्रह्मादि समस्त देवगण आपकी स्तुति करते हैं। माता! आपके चरणकमलोंमें मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ, आप प्रसन्न हों॥ ४२॥

रूपं ते नवनीरदद्युतिरुचिफुल्लाब्जनेत्रोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं स्मितमुखं रत्नाङ्गदैर्भूषितम्।

विभ्राजद्वनमालयाविलसितोरस्कं जगत्तारिणि
भक्त्याहं प्रणतोऽस्मि देवि कृपया दुर्गे प्रसीदाम्बिके॥ ४३॥

दुर्गे! जलधरकी आभायुक्त नवीन और खिले हुए कमलके समान उज्ज्वल नेत्रवाला आपका रूप अपनी कान्तिसे विश्वको विमोहित करनेवाला है। आपके मुखपर मुसकान सुशोभित है, आपके गलेमें वनमाला और अंगोंपर रत्नजटित अंगद आदि आभूषण सुशोभित हो रहे हैं। जगत्का उद्धार करनेवाली देवी! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ, अम्बिके! कृपा करके आप प्रसन्न हों॥ ४३॥

मातः कः परिवर्णितुं तव गुणं रूपं च विश्वात्मकं
शक्तो देवि जगत्त्रये बहुगुणैर्देवोऽथवा मानुषः।
तत् किं स्वल्पमतिर्ब्रवीमि करुणां कृत्वा स्वकीयैर्गुणै-
र्नो मां मोहय मायया परमया विश्वेशि तुभ्यं नमः॥ ४४॥

जगदम्बे! आपके विश्वात्मक रूप और गुणको सर्वात्मना वर्णन करनेमें तीनों लोकोंमें देवता अथवा मनुष्य कोई भी सक्षम नहीं है। फिर मैं अल्पमति उसका कैसे वर्णन करूँ? आप अपने स्वाभाविक गुणोंसे मुझपर दया करते हुए अपनी परम मायासे मुझे मोहित न करें। विश्वेश्वरि! आपको नमस्कार है॥ ४४॥

अद्य मे सफलं जन्म तपश्च सफलं मम।
यत्त्वं त्रिजगतां माता मत्पुत्रीत्वमुपागता॥ ४५॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं मातस्त्वं निजलीलया।
नित्यापि मद्गृहे जाता पुत्रीभावेन वै यतः॥ ४६॥
किं ब्रुवे मेनकायाश्च भाग्यं जन्मशतार्जितम्।
यतस्त्रिजगतां मातुरपि माता भवेत्तव॥ ४७॥

आज मेरा जन्म और तप सफल हुआ, जो त्रिलोकजननी आप मेरी पुत्रीके रूपमें आयीं। मा! मैं धन्य और कृतार्थ हुआ, जो कि

आपने नित्या प्रकृति होकर भी अपनी लीलासे पुत्रीभावसे मेरे घरमें जन्म लिया। मैं मेनाके भी भाग्यकी क्या सराहना करूँ, जिन्हें अपने सैकड़ों जन्मोंके अर्जित पुण्यके प्रभावसे त्रिलोकजननीकी भी जननी होनेका सौभाग्य मिला है॥ ४५—४७॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गिरीन्द्रतनया गिरिराजेन संस्तुता।
बभूव सहसा चारुरूपिणी पूर्ववन्मुने॥ ४८॥
मेनकापि विलोक्यैवं विस्मिता भक्तिसंयुता।
ज्ञात्वा ब्रह्ममयीं पुत्रीं प्राह गद्‌गदया गिरा॥ ४९॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! इस प्रकार गिरिराज हिमालयके द्वारा प्रार्थना करनेपर पर्वतराजपुत्री सहसा पूर्वके समान सुन्दर रूपमें हो गयीं। मेना भी यह देखकर चकित हुईं और अपनी पुत्रीको ब्रह्मस्वरूपिणी जानकर गद्‌गद वाणीसे भक्तिपूर्वक ऐसा कहने लगीं— ॥ ४८-४९ ॥

मेनकोवाच

मातः स्तुतिं न जानामि भक्तिं वा जगदम्बिके।
तथाप्यहमनुग्राह्या त्वया निजगुणेन हि॥ ५०॥
त्वया जगदिदं सृष्टं त्वमेवैतत्फलप्रदा।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वव्याप्याधितिष्ठसि॥ ५१॥

मेनका बोलीं—माता जगदम्बिका! मैं न तो आपकी स्तुति ही जानती हूँ एवं न भक्ति ही; फिर भी आप अपने करुणामय स्वभावके कारण मुझपर कृपा करती रहें। आप ही इस संसारकी सृष्टि करती हैं। आप ही सभी कर्मोंका फल प्रदान करती हैं। आप ही सभीका आधार हैं और आप ही सभीको व्याप्त करके स्थित रहती हैं॥ ५०-५१॥

श्रीदेव्युवाच

त्वया मातस्तथा पित्राप्यनेनाराधिता ह्यहम्।
महोग्रतपसा पुत्रीं लब्धुं मां परमेश्वरीम्॥ ५२॥
युवयोस्तपसस्तस्य फलदानाय लीलया।
नित्या लब्धवती जन्म गर्भे तव हिमालयात्॥ ५३॥

श्रीदेवीजी बोलीं—माता! आपने और पिताजीने उग्र तपस्यासे मुझ परमेश्वरीको पुत्रीरूपमें पानेके लिये आराधना की थी। आप दोनोंके उस तपका फल देनेके लिये ही लीलापूर्वक मैंने नित्या प्रकृति होकर भी हिमालयके द्वारा आपके गर्भसे जन्म लिया है॥ ५२-५३॥

श्रीमहादेव उवाच

ततो गिरीन्द्रस्तां देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
पप्रच्छ ब्रह्मविज्ञानं प्राञ्जलिर्मुनिसत्तम॥ ५४॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! तब गिरिराज हिमालयने उन देवीको बारम्बार प्रणाम करके हाथ जोड़कर ब्रह्मविज्ञान (ब्रह्मविषयक अपरोक्षानुभूति-सम्बन्धी ज्ञान)-की जिज्ञासा की॥ ५४॥

हिमालय उवाच

मातस्त्वं बहुभाग्येन मम जातासि कन्यका।
ब्रह्माद्यैर्दुर्लभा योगिदुर्गम्या निजलीलया॥ ५५॥
अहं तव पदाम्भोजं प्रपन्नोऽस्मि महेश्वरि।
यथाञ्जसा तरिष्यामि संसारापारवारिधिम्॥ ५६॥
यस्मात्कालस्य कालस्त्वं महाकालीति गीयसे।
तस्मात्त्वं शाधि मातर्मां ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्॥ ५७॥

हिमालय बोले—मा! आप बड़े भाग्यसे मेरी पुत्रीके रूपमें आयी हैं, यह आपकी लीला ही है; क्योंकि आप ब्रह्मादि देवगण और योगियोंके लिये भी अगम्य और दुर्लभ हैं। महेश्वरी! मैं आपके

चरणकमलोंकी शरणमें हूँ। मा! क्योंकि आप कालकी भी काल हैं, इसलिये आपको लोग महाकाली कहते हैं। आप मुझे कृपापूर्वक उस उत्तम ब्रह्मविद्याकी शिक्षा दें, जिससे मैं इस अपार संसारसागरको सरलतापूर्वक पार कर जाऊँ॥ ५५—५७॥

श्रीपार्वत्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि योगसारं महामते।
यस्य विज्ञानमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत्॥ ५८॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—पिताजी! महामते! सुनिये, मैं उस योगका सार बताती हूँ, जिसके जाननेमात्रसे प्राणी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥ ५८॥

गृहीत्वा मम मन्त्रान्वै सद्‌गुरोः सुसमाहितः।
कायेन मनसा वाचा मामेव हि समाश्रयेत्॥ ५९॥

सद्‌गुरुसे मेरे मन्त्रको ग्रहण करके स्थिरचित्त हो साधकको शरीर, मन और वाणीसे मेरा ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ ५९॥

मच्चित्तो मद्‌गतप्राणो मन्नामजपतत्परः।
मत्प्रसङ्गो मदालापो मद्‌गुणश्रवणे रतः॥ ६०॥
भवेन्मुमुक्षू राजेन्द्र मयि भक्तिपरायणः।
मदर्चाप्रीतिसंसक्तमानसः साधकोत्तमः॥ ६१॥

मुमुक्षुको चाहिये कि वह मेरेमें ही चित्त और प्राणको लगाये रखे, तत्परतापूर्वक मेरे नामका जप करता रहे, मेरे गुण और लीला-कथाओंके श्रवणमें लगा रहे, वह मुझसे वार्तालाप करनेवाला हो और मुझसे शाश्वत सम्बन्ध बनाये रखे तथा राजेन्द्र! वह उत्तम साधक मेरी भक्तिमें परायण होकर अपना चित्त मेरी पूजाके प्रति अनुरक्त रखे॥ ६०-६१॥

पूजायज्ञादिकं कुर्याद्यथाविधिविधानतः।
श्रुतिस्मृत्युदितैः सम्यक् स्ववर्णाश्रमवर्णितैः॥ ६२॥
सर्वयज्ञतपोदानैर्मामेव हि समर्चयेत्।
ज्ञानात्सञ्जायते मुक्तिर्भक्तिर्ज्ञानस्य कारणम्॥ ६३॥
धर्मात्सञ्जायते भक्तिर्धर्मो यज्ञादिको मतः।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं ममेदं रूपमाश्रयेत्॥ ६४॥

उसे श्रुति तथा स्मृतिमें बताये गये अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार विधि-विधानसे मेरी पूजा और यज्ञ आदि सम्पन्न करने चाहिये। सभी यज्ञ, तप और दानसे मेरी ही अर्चना करनी चाहिये। ज्ञानसे मुक्ति होती है और भक्तिसे ज्ञान होता है। धर्मसे भक्तिका उदय होता है और यज्ञ-यागादि धर्मके ही रूप हैं, इसलिये मोक्षार्थीको धर्मरूपी यज्ञार्चन आदिके लिये मेरे इस रूपका आश्रय लेना चाहिये॥ ६२—६४॥

सर्वाकाराहमेवैका सच्चिदानन्दविग्रहा।
मदंशेन परिच्छिन्ना देहाः स्वर्गौकसां पितः॥ ६५॥
तस्मान्मामेव विध्युक्तैः सकलैरेव कर्मभिः।
विभाव्य प्रयजेद्भक्त्या नान्यथा भावयेत्सुधीः॥ ६६॥

पिताजी! सभी आकारोंमें एकमात्र मैं ही विद्यमान हूँ और स्वर्गके देवता मुझ सच्चिदानन्दरूपाके अंशसे ही उत्पन्न हैं। इसलिये वेदोक्त सभी कर्मोंसे भक्तिपूर्वक मेरा ही अर्चन करना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अन्य कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ ६५-६६॥

एवं वियुक्तकर्माणि कृत्वा निर्मलमानसः।
आत्मज्ञानसमुद्युक्तो मुमुक्षुः सततं भवेत्॥ ६७॥

इस प्रकार अनासक्तभावसे कर्मोंको सम्पन्न करके विशुद्ध अन्तःकरणवाले मोक्षार्थी साधकको आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें निरन्तर प्रयत्नशील होना चाहिये॥ ६७॥

घृणां वितत्य सर्वत्र पुत्रमित्रादिकेष्वपि।
वेदान्तादिषु शास्त्रेषु संनिविष्टमना भवेत्॥ ६८॥
कामादिकं त्यजेत्सर्वं हिंसां चापि विवर्जयेत्।
एवं कृत्वा परां विद्यां जानीते नात्र संशयः॥ ६९॥
यदैवात्मा महाराज प्रत्यक्षमनुभूयते।
तदैव जायते मुक्तिः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते॥ ७०॥

पुत्र-मित्रादिसे सम्बन्धोंमें अनासक्त होकर वेदान्तादि शास्त्रोंके अभ्यासमें दत्तचित्त रहना चाहिये। ऐसे साधकको काम-क्रोधादि विकारोंका तथा सभी प्रकारकी हिंसाका पूर्णरूपसे त्याग करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे निःसंदेह पराविद्याका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। महाराज! जब इस आत्माकी प्रत्यक्षानुभूति होती है, उसी क्षण मुक्ति हो जाती है। यह निश्चित सत्य बात आपके लिये मैं बता रही हूँ॥ ६८—७०॥

किंत्वेतदुर्लभं तात मद्भक्तिविमुखात्मनाम्।
तस्माद्भक्तिः परा कार्या मयि यत्नान्मुमुक्षुभिः॥ ७१॥

किंतु पिताजी! मेरी भक्तिसे विमुख प्राणियोंके लिये यह प्रत्यक्षानुभूति अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये मोक्षसाधकोंको यत्नपूर्वक मेरी भक्तिमें ही संलग्न रहना चाहिये॥ ७१॥

त्वमप्येवं महाराज मयोक्तं कुरु सर्वदा।
संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन॥ ७२॥

महाराज! आप भी मेरे बताये अनुसार करेंगे तो संसारके समस्त दुःखोंसे कभी बाधित नहीं होंगे॥ ७२॥

॥ इति श्रीदेवीपुराणे भगवतीगीतायां श्रीपार्वती-हिमालयसंवादे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्मविद्याका उपदेश तथा अनासक्तयोगका वर्णन

हिमालय उवाच

विद्या वा कीदृशी मातर्यतो मुक्तिः प्रजायते।
आत्मा वा किं स्वरूपश्च तन्मे ब्रूहि महेश्वरि॥ १॥

हिमालय बोले—माता! वह कैसी विद्या है, जिससे मुक्ति प्राप्त होती है? महेश्वरी! आत्मा क्या है तथा उसका स्वरूप क्या है? यह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीपार्वत्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि या संसारनिवर्तिका।
विद्या तस्याः स्वरूपं हि संक्षेपेण महामते॥ २॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—तात! महामते! सुनिये, संसारसे मुक्ति दिलानेवाली जो विद्या है, उसके स्वरूपका मैं संक्षेपमें वर्णन कर रही हूँ॥ २॥

बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतीन्द्रियतः पृथक्।
अद्वितीयश्चिदात्माहं शुद्ध एवेति निश्चितम्॥ ३॥
संवेत्ति येन ज्ञानेन विद्या तद्ध्यानमुच्यते।
आत्मा निरामयः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः॥ ४॥

बुद्धि, प्राण, मन, देह, अहंकार और इन्द्रियोंसे अलग शुद्ध और अद्वितीय चित्स्वरूप आत्मा मैं ही हूँ। ऐसा पूर्णतः निश्चित है। जिस ज्ञानके द्वारा आत्मस्वरूपका सम्यक् अवबोध होता है, वही विद्या है और उसी विद्याको ध्यान भी कहा जाता है। आत्मा निर्विकार, विशुद्ध तथा जन्म-मरण आदिसे रहित है॥ ३-४॥

बुद्ध्याद्युपाधिरहितश्चिदानन्दात्मको मतः।
आनन्दः सुप्रभः पूर्णः सत्यज्ञानादिलक्षणः॥ ५॥

एक एवाद्वितीयश्च सर्वदेहगतः परः।
स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन् सुसमास्थितः॥ ६॥

वह आत्मा बुद्धि आदि उपाधियोंसे रहित, चिदानन्दस्वरूप, आनन्दमय, परम प्रभायुक्त, पूर्ण तथा सत्य-ज्ञान आदि लक्षणोंवाला है। वही एकमात्र अद्वितीय सर्वश्रेष्ठ आत्मा अपने प्रकाशसे सभी प्राणियोंके सूक्ष्म देहादिको प्रकाशित करते हुए सम्यक् रूपसे सबके भीतर विराजमान है॥ ५-६॥

इत्यात्मनः स्वरूपं ते गिरिराज मयोदितम्।
एवं विचिन्तयेन्नित्यमात्मानं सुसमाहितः॥ ७॥

गिरिराज! इस प्रकार मैंने आपसे आत्माके स्वरूपका वर्णन कर दिया। मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर इस प्रकारके लक्षणवाले आत्माका नित्य चिन्तन करना चाहिये॥ ७॥

अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिं विवर्जयेत्।
रागद्वेषादिदोषाणां हेतुभूता हि सा यतः॥ ८॥
रागद्वेषादिदोषेभ्यः सदोषं कर्म सम्भवेत्।
ततः पुनः संसृतिश्च तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥ ९॥

देह आदि अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धिका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि वैसी बुद्धि राग-द्वेष आदि दोषोंका मूल कारण है। राग-द्वेष आदि दोषोंसे दोषयुक्त कर्म ही सम्भव हैं। उनसे प्राणी जन्म-मरणकी प्रक्रियासे निरन्तर बँधा रहता है, अतः शरीरादि अनात्म पदार्थोंमें उस आत्मबुद्धिका परित्याग कर देना चाहिये॥ ८-९॥

हिमालय उवाच

अशुभादृष्टजनका रागद्वेषादयः शिवे।
कथं जनैः परित्याज्यास्तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥ १०॥

कुर्वन्ति येऽपकाराणि कथं तान् सहते जनः।
तेषु रागश्च विद्वेषः कथं वा न भवेत्तयोः॥ ११॥

हिमालय बोले—शिवे! राग-द्वेष आदिसे पापात्मक अशुभ अदृष्ट पैदा होता है, उसका परित्याग लोग किस प्रकार करें; इसे आप कृपा करके मुझे बताइये। जो लोग दूसरे मनुष्यका अपकार करते हैं, उनके प्रति वह व्यक्ति सहिष्णुताका भाव किस प्रकार रखे और उनके प्रति उस व्यक्तिमें किस प्रकारसे इष्टानिष्टविषयक राग तथा द्वेष न हों॥ १०-११॥

श्रीपार्वत्युवाच

अपकारः कृतः कस्य तदेवाशु विचारयेत्।
विचार्यमाणे तस्मिंश्च द्वेष एव न जायते॥ १२॥
पञ्चभूतात्मको देहो मुक्तो जीवो यतः स्वयम्।
वह्निना दह्यते वापि शिवाद्यैर्भक्षितोऽपि वा॥ १३॥
तथापि यो विजानाति कोऽपकारोऽस्ति तस्य वै।

श्रीपार्वती बोलीं—'अपकार किसका किया गया'—इसपर शीघ्र विचार करना चाहिये। उसपर विचार करनेसे द्वेष उत्पन्न ही नहीं होगा। पाँच महाभूतोंसे मिलकर यह देह बना हुआ है, जिससे यह जीव स्वयं भिन्न है। यह शरीर या तो अग्निके द्वारा जला दिया जाता है या शिवा (सियार) आदिके द्वारा भक्षित कर लिया जाता है; किंतु आत्मा नहीं। जो इस प्रकारका ज्ञान रखता है, उसका भला कौन-सा अपकार हो सकता है?॥ १२-१३१/२॥

आत्मा शुद्धः स्वयम्पूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः॥ १४॥
न जायते न म्रियते निर्लेपो न च दुःखभाक्।
विच्छिद्यमाने देहेऽपि नापकारोऽस्य जायते॥ १५॥

अपने-आपमें पूर्ण तथा सच्चिदानन्द स्वरूपवाला यह विशुद्ध आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, न सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें लिप्त

होता है और न तो कष्ट ही भोगता है। अतः शरीरके काटे जानेपर भी इस आत्माका कोई अपकार नहीं होता॥ १४-१५॥

यथा गेहान्तरस्थस्य नभसः क्वापि लक्ष्यते।
गृहेषु दह्यमानेषु गिरिराज तथैव हि॥ १६॥
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतः।
तावुभौ भ्रान्तहृदयौ नायं हन्ति न हन्यते॥ १७॥

गिरिराज! जैसे घरके अन्दर अवस्थित आकाशपर घरके जलनेका कोई प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार शरीरके अन्दर अवस्थित आत्मापर शरीरके छेदन आदिका कोई प्रभाव नहीं होता। जो मारनेमें इस आत्माको मारनेवाला समझता है और जो शरीरके मारे जानेपर आत्माको मारा गया समझता है—ऐसा सोचनेवाले वे दोनों ही लोग भ्रमितचित्तवाले हैं; क्योंकि यह आत्मा न तो मारता है और न मारा ही जाता है॥ १६-१७॥

स्वस्वरूपं विदित्वैवं द्वेषं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।
द्वेषमूलो मनस्तापो द्वेषः संसारखण्डनम्॥ १८॥
मोक्षविघ्नकरो द्वेषस्तं यत्नात्परिवर्जयेत्।

अपने स्वरूपको इस प्रकार जानकर और द्वेष छोड़कर मनुष्य सुखी हो जाय। द्वेष मनके सन्तापका मूल है, द्वेष सांसारिक सम्बन्धोंको भंग करनेवाला है और द्वेष मोक्षप्राप्तिमें विघ्न उत्पन्न करनेवाला है; अतः प्रयत्नपूर्वक उसका परित्याग कर देना चाहिये॥ १८१/२॥

हिमालय उवाच

देहस्यापि न चेद्देवि न जीवस्य परात्मनः॥ १९॥
नापकारोऽत्र विद्येत नैतौ दुःखस्य भागिनौ।
तत्कस्य जायते दुःखं यत्साक्षादनुभूयते॥ २०॥

अन्यो वा कोऽस्मि देहेऽस्मिन् दुःखभोक्ता महेश्वरि।
एतन्मे ब्रूहि तत्त्वेन मयि ते यद्यनुग्रहः॥ २१॥

हिमालय बोले—देवि! यदि देह तथा परमात्मस्वरूप जीवका इस लोकमें अपकार नहीं होता और ये दोनों दुःखके भागी नहीं होते तो फिर जिस दुःखका साक्षात् अनुभव होता है, वह किसे होता है? महेश्वरि! इस शरीरमें दुःख भोगनेवाला दूसरा कौन है? यदि मुझपर आपकी कृपा है तो आप मुझे इस विषयको यथार्थ रूपसे बताइये॥ १९—२१॥

श्रीपार्वत्युवाच

नैव दुःखं हि देहस्य नात्मनोऽपि परात्मनः।
तथापि जीवो निर्लेपो मोहितो मम मायया॥ २२॥
सुख्यहं दुःख्यहं चैव स्वयमेवाभिमन्यते।
अनाद्यविद्या सा माया जगन्मोहनकारिणी॥ २३॥
जातमात्रं हि सम्बद्धस्तया सञ्जायते पितः।
संसारी जायते तेन रागद्वेषादिसंकुलः॥ २४॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—न तो इस देहको और न तो इस परमात्मस्वरूप आत्माको ही दुःख होता है; फिर भी यह निर्लेप (विशुद्ध) आत्मा मेरी मायासे मोहित होकर स्वयं मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ—ऐसा मान लेता है। वह माया अनादि, अविद्यास्वरूपिणी तथा जगत्को मोहित करनेवाली है। पिताजी! वह आत्मतत्त्व उत्पन्न होते ही उस मायासे आबद्ध हो जाता है और उसीसे वह राग-द्वेष आदि विकारोंसे व्याप्त होकर संसारी हो जाता है॥ २२—२४॥

आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य महामते।
निलीना वासना यत्र संसारे वर्ततेऽवशः॥ २५॥

महामते! यह आत्मा अपने लिंगरूप मन, जिसमें वासना निहित

रहती है–को धारण करके लाचार–सा बना हुआ इस संसारमें व्यवहार करता है॥ २५॥

विशुद्धः स्फटिको यद्वद्रक्तपुष्पसमीपतः।
तत्तद्वर्णयुतो भाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम्॥ २६॥
बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनोऽपि तथा गतिः।
मनो बुद्धिरहंकारो जीवस्य सहकारिणः॥ २७॥
स्वकर्मवशतस्तात फलभोक्तार एव ते।
सर्वं वैषयिकं तात सुखं वा दुःखमेव वा॥ २८॥
त एव भुञ्जते नात्मा निर्लेपः प्रभुरव्ययः।

रक्तवर्णके पुष्पके समीप स्थित शुद्ध स्फटिक उसके सांनिध्यके कारण उसीके रंगसे युक्त लाल प्रतीत होता है; जबकि वास्तवमें उसमें रंग विद्यमान नहीं रहता है। बुद्धि, इन्द्रिय आदिके सांनिध्यके कारण आत्माकी भी वही गति होती है। मन, बुद्धि तथा अहंकार जीवके सहयोगी हैं। तात! अपने–अपने कर्मोंके अधीन होकर वे ही कर्म–फलका भोग करते हैं। वे सभी समस्त विषयात्मक सुखों तथा दुःखोंका भोग करते हैं; आत्मा भोग नहीं करता; क्योंकि यह आत्मा प्रभुतासम्पन्न, विकाररहित तथा निर्लिप्त है॥ २६—२८१/२॥

सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनावासितैः सह॥ २९॥
जायते जीव एवं हि वसत्याभूतसम्प्लवम्।
ततो ज्ञानविचारेण त्यक्त्वा मोहं विचक्षणः॥ ३०॥
सुखी भवेन्महाराज इष्टानिष्टोपपत्तिषु।

सृष्टिके समय यह जीव पूर्वजन्मकी वासनाओंसे युक्त अन्तःकरणके साथ उत्पन्न होता है और इस प्रकार यह जीव प्रलयपर्यन्त सृष्टिमें निवास करता है। इसलिये महाराज! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ज्ञान–

विचारके द्वारा इच्छित तथा अनिच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिमें मोहका परित्यागकर सुखी हो जाय॥ २९-३०१/२ ॥

देहमूलो मनस्तापो देहः संसारकारणम्॥ ३१ ॥
देहः कर्मसमुत्पन्नः कर्म च द्विविधं मतम्।
पापं पुण्यं च राजेन्द्र तयोरंशानुसारतः॥ ३२ ॥
देहिनः सुखदुःखं स्यादलङ्घ्यं दिनरात्रिवत्।

देह मनके सन्तापका मूल है और यह देह संसारका कारण भी है। यह देह कर्मसे उत्पन्न होता है और वह कर्म पाप तथा पुण्यभेदसे दो प्रकारका होता है। राजेन्द्र! उन्हीं पाप-पुण्यके अंशके अनुसार जीवको सुख तथा दुःख प्राप्त होते हैं। दिन एवं रातकी भाँति इन सुख और दुःखका उल्लंघन नहीं किया जा सकता॥ ३१-३२१/२ ॥

स्वर्गादिकामः कृत्वापि पुण्यं कर्मविधानतः।
प्राप्य स्वर्गं पतत्याशु भूयः कर्म प्रचोदितम्॥ ३३ ॥
तस्मात्सत्संगमं कृत्वा विद्याभ्यासपरायणः।
विमुक्तसङ्गः परमं सुखमिच्छेद्विचक्षणः॥ ३४ ॥

स्वर्ग आदिकी प्राप्तिकी कामना करनेवाला विधानपूर्वक पुण्य कर्म करके स्वर्ग प्राप्त करनेके बाद भी शीघ्र ही कर्मसे प्रेरित होकर पुनः मृत्युलोकमें गिरता है। अतएव विद्वान्को आसक्तिका त्याग करते हुए विद्याभ्यासमें तत्पर रहकर तथा सत्संग करके परम सुखकी अभिलाषा रखनी चाहिये॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीदेवीपुराणे भगवतीगीतायां श्रीपार्वती-हिमालयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

गर्भस्थ जीवका स्वरूप तथा गर्भमें की गयी जीवकी प्रतिज्ञा, विषयभोगोंकी दुःखमूलकता तथा देवीभक्तिकी महिमा

हिमालय उवाच

दुःखस्य कारणं देहः पञ्चभूतात्मकः शिवे।
यतस्तद्विरहाद्देही न दुःखैः परिभूयते॥ १॥
सोऽयं सञ्जायते मातः कथं देहो महेश्वरि।
यं प्राप्य सुकृतान् कामान् कृत्वा स्वर्गमवाप्स्यति॥ २॥
क्षीणपुण्यः कथं जीवो जायते च पुनर्भुवि।
तद् ब्रूहि विस्तरेणाशु यदि ते मय्यनुग्रहः॥ ३॥

हिमालय बोले—शिवे! यह पंचभूतात्मक देह ही दुःखका कारण है; क्योंकि उससे विलग जीव दुःखोंसे प्रभावित नहीं होता है। माता! महेश्वरी! जिस देहको प्राप्तकर यह जीव पुण्यकार्य करके स्वर्ग प्राप्त करता है, वह यह देह किस प्रकार उत्पन्न होता है? और यह जीव पुण्यके क्षीण होनेपर पुनः पृथ्वीपर किस प्रकार उत्पन्न होता है। यदि आप मुझपर कृपा रखती हैं तो उन बातोंको शीघ्र ही विस्तारपूर्वक मुझसे बताइये॥ १—३॥

श्रीपार्वत्युवाच

क्षितिर्जलं तथा तेजो वायुराकाश एव च।
एतैः पञ्चभिराबद्धो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः॥ ४॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन्हीं पंचमहाभूतोंसे यह देह निर्मित है, इसीलिये यह पांचभौतिक कहा गया है॥ ४॥

प्रधानं पृथिवी तत्र शेषाणां सहकारिता।
उक्तश्चतुर्विधः सोऽयं गिरिराज निबोध मे॥ ५॥
अण्डजाः स्वेदजाश्चैवोद्भिज्जाश्चैव जरायुजाः।
अण्डजाः पक्षिसर्पाद्याः स्वेदजा मशकादयः॥ ६॥
वृक्षगुल्मप्रभृतयश्चोद्भिज्जा हि विचेतनाः।
जरायुजा महाराज मानुषाः पशवस्तथा॥ ७॥

उन पाँचोंमें पृथ्वीतत्त्व तो प्रधान है और शेष चारकी उसके साथ सहभागितामात्र है। गिरिराज! वह यह पांचभौतिक देह भी चार प्रकारका कहा गया है; जिसे मुझसे समझ लीजिये। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज—ये उसके भेद हैं। महाराज! उनमें पक्षी, सर्प आदि अण्डज हैं; मशक (मच्छर) आदि स्वेदज हैं; वृक्ष, झाड़ी आदि सुषुप्त चैतन्यवाले उद्भिज्ज हैं और मनुष्य, पशु आदि जरायुज हैं॥ ५—७॥

शुक्रशोणितसम्भूतो देहो ज्ञेयो जरायुजः।
भूयः स त्रिविधो ज्ञेयः पुंस्त्रीक्लीबविभेदतः॥ ८॥
शुक्राधिक्येन पुरुषो भवेत्पृथ्वीधराधिप।
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी तयोः साम्ये नपुंसकम्॥ ९॥

शुक्र, रज आदिसे निर्मित देहको जरायुज समझना चाहिये। पुनः उस जरायुजको भी पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। पर्वतराज! शुक्रकी अधिकतासे पुरुष, रजकी अधिकतासे स्त्री तथा उन दोनोंकी समानतासे नपुंसक होते हैं॥ ८-९॥

स्वकर्मवशतो जीवो नीहारकलया युतः।
पतित्वा धरणीपृष्ठे व्रीहिमध्यगतो भवेत्॥ १०॥
स्थित्वा तत्र चिरं भुक्त्वा भुज्यते पुरुषैस्ततः।
ततः प्रविष्टं तद्गुह्यं पुंसो देहे प्रजायते॥ ११॥

रेतस्तेन स जीवोऽपि भवेद्रेतोगतस्तदा।

अपने कर्मोंके वशीभूत जीव ओसकणोंसे संयुक्त होकर पृथ्वीतलपर गिरनेपर धान्य (वनस्पति)-के बीच पहुँचता है। वहाँ रहकर चिरकालतक कर्मभोग करता है। पुनः जीवोंके द्वारा उसका भोग किया जाता है। तदनन्तर पुरुषके देहमें गुह्येन्द्रियोंमें प्रविष्ट होकर वह वीर्यरूप हो जाता है। उसी कारणसे वह जीव भी वीर्यमें संनिविष्ट हो जाता है* ॥ १०-११ $\frac{१}{२}$ ॥

ततस्त्रियाऽभियोगेन ऋतुकाले महामते॥ १२॥
रेतसा सहितः सोऽपि मातृगर्भं प्रयाति हि।

महामते! तत्पश्चात् ऋतुकालमें स्त्रीके साथ पुरुषका संयोग होनेपर वीर्यके साथ-साथ वह जीव भी माताके गर्भमें पहुँच जाता है॥ १२ $\frac{१}{२}$ ॥

ऋतुस्नाता भवेन्नारी चतुर्थेऽहनि तद्दिनात्॥ १३॥
आषोडशदिनाद्राजन् ऋतुकाल उदाहृतः।

राजन्! रजोधर्मके चौथे दिन स्त्री ऋतुस्नान करके शुद्ध होती है; उस दिनसे लेकर सोलहवें दिनतक ऋतुकाल कहा गया है॥ १३ $\frac{१}{२}$ ॥

अयुग्मदिवसे नारी जायते पर्वतर्षभ॥ १४॥
जायते च पुमांस्तत्र युग्मके दिवसे पितः।
ऋतुस्नाता तु कामार्ता मुखं यस्य समीक्षते॥ १५॥

* यहाँपर सृष्टि-परम्पराकी निरन्तरताकी ओर संकेत है। संक्षेपमें कर्मफल-भोगके अनन्तर शेष कर्मोंसे आविष्ट जीव आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा ओषधि, पुष्प, फल, अन्न आदिके रूपमें देहान्तरकी प्राप्ति करता हुआ स्त्री-पुरुषके द्वारा अन्नादिका भोग करनेपर वीर्य तथा रजस्के रूपमें उसका पुनः विपरिणाम होता है और पुनः वीर्य तथा रजस्के संयोगसे सृष्टि-प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रकार अवान्तरभूत अविदित सृष्टि-प्रक्रियाके प्रति जागरूक करनेके लिये भगवतीका उपदेश है।

तदाकृतिः सन्ततिः स्यात्तत्पश्येद्भर्तुराननम्।

पर्वतश्रेष्ठ! विषम दिनमें समागम करनेसे स्त्री और सम दिनमें समागम करनेसे पुरुषकी उत्पत्ति होती है। पिताजी! ऋतुस्नान की हुई कामार्त स्त्री जिसके मुखका दर्शन करती है, उसीकी मुखाकृतिकी सन्तान जन्म लेती है। अतः स्त्रीको उस समय अपने पतिका मुख देखना चाहिये॥ १४-१५१/२॥

तद्रेतो योनिरक्तेन युक्तं भूत्वा महामते॥ १६॥
दिनेनैकेन कललं जरायुपरिवेष्टितम्।
भूत्वा पञ्चदिनैरेव बुद्बुदाकारतामियात्॥ १७॥
या तु चर्माकृतिः सूक्ष्मा जरायुः सा निगद्यते।
शुक्रशोणितयोर्योगस्तस्मिन् सञ्जायते यतः॥ १८॥
तत्र गर्भो भवेद्यस्मात्तेन प्रोक्तो जरायुजः।

महामते! वह वीर्य स्त्रीके योनिस्थित रजसे मिलकर एक दिनमें कलल (अवस्थाविशेष) बन जाता है। वही कलल अत्यन्त सूक्ष्म झिल्लीसे पूर्णतया आवृत होकर पाँच दिनोंमें बुलबुलेके आकारका हो जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म आकारकी जो चमड़ेकी झिल्ली होती है, उसे जरायु कहा जाता है। चूँकि उसमें वीर्य तथा रजका योग होता है और उसीसे गर्भ उत्पन्न होता है, इसलिये उसे 'जरायुज' कहा गया है॥ १६—१८१/२॥

ततस्तत्सप्तरात्रेण मांसपेशीत्वमाप्नुयात्॥ १९॥
पक्षमात्रेण सा पेशी तच्छोणितपरिप्लुता।
ततश्चाङ्कुर उत्पन्नः पञ्चविंशतिरात्रिषु॥ २०॥
स्कन्धो ग्रीवा शिरःपृष्ठोदराणि च महामते।
पञ्चधाङ्गानि जायन्ते एवं मासेन च क्रमात्॥ २१॥

तत्पश्चात् सात रातोंमें वह मांसपेशियोंसे युक्त हो जाता है और

फिर एक पक्षमें वह जो पेशी होती है, उसमें रक्तप्रवाह होने लगता है। तत्पश्चात् पचीस रातोंमें देहके अवयव अंकुरित होने लगते हैं। महामते! एक महीनेमें क्रमसे स्कन्ध (कन्धा), गर्दन, सिर, पीठ और पेट—ये पाँच प्रकारके अंग निर्मित हो जाते हैं॥ १९—२१॥

द्वितीये मासि जायन्ते पाणिपादादयस्तथा।
अङ्गानां सन्धयः सर्वे तृतीये सम्भवन्ति हि॥ २२॥
अङ्गुल्यश्चापि जायन्ते चतुर्थे मासि सर्वतः।
अभिव्यक्तिश्च जीवस्य तस्मिन्नेव हि जायते॥ २३॥
ततश्चलति गर्भोऽपि जनन्या जठरे स्थितः।

दूसरे महीनेमें हाथ और पैर हो जाते हैं तथा तीसरे महीनेमें अंगोंकी सभी सन्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पुनः चौथे महीनेमें सभी अंगुलियाँ बन जाती हैं और उसी महीनेमें उसके भीतर जीवकी अभिव्यक्ति हो जाती है। तब माताके उदरमें स्थित गर्भ चलने भी लग जाता है॥ २२–२३१/२॥

श्रोत्रे नेत्रे तथा नासा जायन्ते मासि पञ्चमे॥ २४॥
तथैव च मुखं श्रोणिर्गुह्यं तस्मिन् प्रजायते।
पायुर्मेढ्रमुपस्थं च कर्णछिद्रद्वयं तथा॥ २५॥
तथैव मासि षष्ठे तु नाभिश्चापि भवेन्नृणाम्।
सप्तमे केशरोमाद्या जायन्ते च तथाष्टमे॥ २६॥
विभक्तावयवत्वं च जायते गर्भमध्यतः।
विहाय श्मश्रुदन्तादीन् जन्मान्तरसमुद्भवात्॥ २७॥
समस्तावयवा एवं जायन्ते क्रमतः पितः।

पाँचवें महीनेमें कान, नेत्र और नाकका निर्माण होता है एवं उसी महीनेमें मुख, कमर, गुदा-शिश्न—लिंग आदि गुह्य अंग और कानोंमें दोनों छिद्र भी बन जाते हैं। उसी तरह छठे महीनेमें मनुष्योंकी

नाभि बन जाती है और सातवें महीनेमें केश, रोम आदि उग आते हैं। आठवें महीनेमें गर्भमें सभी अवयव स्पष्टरूपसे अलग-अलग बन जाते हैं। इस प्रकार पिताजी! जन्मके पश्चात् उगनेवाले दाढ़ी, मूँछ और दाँत आदिको छोड़कर सभी अंग क्रमसे निर्मित हो जाते हैं॥ २४—२७१/२॥

नवमे मासि जीवस्तु चैतन्यं सर्वशो लभेत्॥ २८॥
मातृभुक्तानुसारेण वर्धते जठरे स्थितः।
प्राप्य वै यातनां घोरां खिद्यते च स्वकर्मतः॥ २९॥
स्मृत्वा प्राक्तनदेहोत्थकर्माणि बहुदुःखितः।
मनसा वचनं ब्रूते विचार्य स्वयमेव हि॥ ३०॥
एवं दुःखमनुप्राप्य भूयो जन्म लभेत्क्षितौ।
अन्यायेनार्जितं वित्तं कुटुम्बभरणं कृतम्॥ ३१॥
नाराधिता भगवती दुर्गा दुर्गतिहारिणी।
यद्यस्मान्निष्कृतिर्मे स्याद् गर्भदुःखात्तदा पुनः॥ ३२॥
विषयान्नानुसेविष्ये विना दुर्गां महेश्वरीम्।
नित्यं तामेव भक्त्याहं पूजये यतमानसः॥ ३३॥
वृथा पुत्रकलत्रादिवासनावशतोऽसकृत्।
निविष्टसंसारमनाः कृतवानात्मनोऽहितम्॥ ३४॥
तस्येदानीं फलं भुञ्जे गर्भदुःखं दुरासदम्।
तन्न भूयः करिष्यामि वृथा संसारसेवनम्॥ ३५॥

नौवें महीनेमें जीवमें पूर्णरूपसे चेतनाशक्ति आ जाती है। वह उदरमें स्थित रहकर माताके द्वारा ग्रहण किये गये भोजनके अनुसार वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। वहाँपर अपने जन्मान्तरके कर्मोंके अनुसार घोर यातना प्राप्त करके वह जीव खिन्न हो उठता है और पूर्वजन्ममें अपने शरीरसे किये गये कर्मोंको यादकर अत्यन्त दुःखी हो जाता

है। माताके गर्भमें इस प्रकारका कष्ट प्राप्त करके भी जीव बार-बार पृथ्वीपर जन्म लेता रहता है। गर्भावस्थामें वह जीव मनमें यह सब सोचकर स्वयंसे यह बात कहता है—'मैंने अन्यायपूर्वक धन कमाया और उससे अपने कुटुम्बका भरण-पोषण किया, किंतु दुर्गतिका नाश करनेवाली भगवती दुर्गाकी आराधना नहीं की। अब यदि गर्भके दुःखसे मुझे छुटकारा मिल जाय तो मैं पुनः महेश्वरी दुर्गाको छोड़कर विषयोंका सेवन नहीं करूँगा और सर्वदा समाहितचित्त होकर भक्तिपूर्वक उन्हींकी पूजा करूँगा। पुत्र, स्त्री आदिके मोहके वशीभूत होकर तथा सांसारिकतामें अपने मनको आसक्त करके मैंने व्यर्थमें ही अनेक बार अपना अहित कर डाला। इस समय उसीके परिणामस्वरूप मैं यह असहनीय गर्भ-दुःख भोग रहा हूँ। अब मैं पुनः सांसारिक विषयोंका सेवन नहीं करूँगा'॥ २८—३५॥

इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः।
अस्थियन्त्रविनिष्पिष्टो निर्याति योनिवर्त्मना॥ ३६॥
सूतिवातवशास्नोरनरकादिव पातकी।
मेदोऽसृक्प्लुतसर्वाङ्गो जरायुपरिवेष्टितः॥ ३७॥

इस प्रकार अपने कर्मानुसार अनेक प्रकारसे दुःखोंका अनुभव करके वह जीव अपने अंगोंमें मेदा तथा रक्त लपेटे हुए और झिल्लीसे आवृत होकर प्रसववायुके वशीभूत योनिके अस्थि-यन्त्रसे पिसा जाता हुआ-सा उसी प्रकार योनिमार्गसे बाहर निकलता है, जैसे पातकी जीव नरकसे निकलता है॥ ३६-३७॥

ततो मन्मायया मुग्धस्तानि दुःखानि विस्मृतः।
अकिञ्चित्करतां प्राप्य मांसपिण्ड इव स्थितः॥ ३८॥
सुषुम्णा पिहिता नाडी श्लेष्मणा यावदेव हि।
तावद्वक्तुं न शक्नोति सुव्यक्तवचनं त्वसौ॥ ३९॥

न गन्तुमपि शक्नोति बन्धुभिः परिरक्ष्यते।
श्वमार्जारादिदंष्ट्रिभ्यो दूप्तः कालवशात्ततः॥ ४०॥
यथेष्टं भाषते वाक्यं गच्छत्यपि सुदूरतः।
ततश्च यौवनोद्रिक्तः कामक्रोधादिसंयुतः॥ ४१॥
कुरुते विविधं कर्म पापपुण्यात्मकं पितः।

तदनन्तर वह जीव मेरी मायासे मोहित होकर उन दुःखोंको भूल जाता है और कुछ भी न कर सकनेकी स्थितिको प्राप्त होकर मांस-पिण्डकी भाँति स्थित रहता है। जबतक कफ आदिसे उसकी सुषुम्णा नाडी अवरुद्ध रहती है, तबतक वह स्पष्ट वाणी बोलनेमें तथा चल-फिर सकनेमें समर्थ नहीं होता है और दैवयोगसे जब वह कुत्ते, बिल्ली आदि दाढ़युक्त जन्तुओंसे पीड़ित होता है, तब स्वजनोंद्वारा उसकी सम्यक् रक्षा की जाती है। बादमें वह स्वेच्छया कुछ बोलने लगता है और दूर-दूरतक चलने भी लगता है। पिताजी! इसके बाद कुछ काल बीतनेपर यौवनके उन्मादमें आकर वह काम, क्रोध आदिसे युक्त होकर पाप तथा पुण्यकर्म करने लगता है॥ ३८—४११/२॥

कुरुते कर्मतन्त्राणि देहभोगार्थमेव हि॥ ४२॥
स देहः पुरुषाद्भिन्नः पुरुषः किं समश्नुते।
प्रतिक्षणं क्षरत्यायुश्चलत्पर्णस्थतोयवत्॥ ४३॥

जिस देहके भोगके लिये जीव सारे कर्म करता है, वह देह पुरुष (जीवात्मा)-से भिन्न है; क्योंकि जीवात्माका भोगोंसे क्या सम्बन्ध? प्रतिक्षण आयुका क्षरण हो रहा है और वह हिलते हुए पत्तेपर स्थित जलकणकी भाँति क्षणभंगुर है॥ ४२-४३॥

स्वप्नोपमं महाराज सर्वं वैषयिकं सुखम्।
तथापि न भवेद्धानिरभिमानस्य देहिनाम्॥ ४४॥

न चैतद्वीक्षते देही मोहितो मम मायया।
वीक्षते केवलान् भोगांस्तत्र शाश्वतिकानिव॥ ४५॥
अकस्माद्ग्रसते कालः पूर्णे चायुषि भूधर।
यथा व्यालोऽन्तिके प्राप्तं मण्डूकं ग्रसते क्षणात्॥ ४६॥

महाराज! विषय-वासनासम्बन्धी सभी सुख स्वप्नके समान (प्रतीतिमात्र) हैं, फिर भी जीवके अभिमानमें कोई कमी नहीं होती है, मेरी मायासे मोहित हुआ जीव यह सब नहीं देखता। वह भोगोंको शाश्वत समझकर केवल उन्हें ही देखता है और भूधर! आयुके पूरा हो जानेपर काल जीवको अकस्मात् उसी भाँति ग्रस लेता है, जैसे सर्प अपने पास आये हुए मेढकको क्षणभरमें ग्रस लेता है॥ ४४—४६॥

हा हन्त जन्मैतदपि विफलं यातमेव हि।
एवं जन्मान्तरमपि विफलं जायते तथा॥ ४७॥
निष्कृतिर्विद्यते नैव विषयाननुसेविनाम्।
तस्मादात्मविचारेण त्यक्त्वा वैषयिकं सुखम्॥ ४८॥
शाश्वतैश्वर्यमन्विच्छन्मदर्चनपरो भवेत्।
तदैव जायते भक्तिरियं ब्रह्मणि निश्चला॥ ४९॥

महान् कष्टकी बात है कि यह भी जन्म व्यर्थ बीत गया और इसी प्रकार दूसरा जन्म भी व्यर्थ ही चला जाता है। विषय-भोगोंका सेवन करनेवालोंका उद्धार होता ही नहीं। अतः आत्मतत्त्वका विचार करके वासनात्मक सुखका परित्यागकर शाश्वत ऐश्वर्य*की प्राप्तिकी कामना करते हुए मेरी उपासनामें तत्पर रहना चाहिये, तभी ब्रह्मसे स्थिर सम्बन्ध बनता है॥ ४७—४९॥

* शाश्वत ऐश्वर्यका तात्पर्य भौतिक ऐश्वर्यसे नहीं है, कारण वे शाश्वत होते ही नहीं। षडैश्वर्यसम्पन्न परमात्मप्रभुकी प्राप्ति ही शाश्वत ऐश्वर्यकी प्राप्ति है।

देहादिभ्यः पृथक्त्वेन निश्चित्यात्मानमात्मना।
देहादिममतां मिथ्याज्ञानजां परिसंत्यजेत्॥ ५०॥
पितस्त्वं यदि संसारदुःखान्निर्वृत्तिमिच्छसि।
तदाराधय मां भक्त्या ब्रह्मरूपां समाहितः॥ ५१॥

अपनी आत्माको देह आदिसे पृथक् निश्चित करके मिथ्याज्ञानजनित देह आदिकी ममताका त्याग कर देना चाहिये। पिताजी! यदि आप सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा चाहते हैं तो एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक मुझ ब्रह्मरूपिणी भगवतीकी आराधना कीजिये॥ ५०-५१॥

॥ इति श्रीदेवीपुराणे भगवतीगीता श्रीपार्वती-हिमालयसंवादे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चौथा अध्याय

मोक्षयोगका उपदेश, दस महाविद्याओंका वर्णन तथा अनन्य शरणागतिकी महिमा

हिमालय उवाच

अनाश्रितानां त्वां देवि मुक्तिश्चेन्नैव विद्यते।
कथं समाश्रयेत्त्वां तत्कृपया ब्रूहि मे तदा॥ १॥
संध्येयं कीदृशं रूपं मातस्तव मुमुक्षुभिः।
त्वयि भक्तिः परा कार्या देहबन्धविमुक्तये॥ २॥

हिमालय बोले—देवि! यदि आपका आश्रय ग्रहण न करनेवालोंकी मुक्ति है ही नहीं तो कृपा करके मुझे यह बताइये कि मनुष्य किस प्रकार आपकी शरण प्राप्त करे। माता! देहबन्धनसे छुटकारेके लिये मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको आपके किस रूपका ध्यान करना चाहिये और आपकी कैसी परम भक्ति करनी चाहिये?॥ १-२॥

श्रीपार्वत्युवाच

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
तेषामपि सहस्त्रेषु कोऽपि मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ३॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं— हजारों मनुष्योंमें कोई-कोई सिद्धिके लिये प्रयास करता है और सिद्धिके लिये तत्पर उन हजार लोगोंमें भी कोई-कोई ही मुझे वस्तुतः जान पाता है॥ ३॥

रूपं मे निष्कलं सूक्ष्मं वाचातीतं सुनिर्मलम्।
निर्गुणं परमं ज्योतिः सर्वव्याप्येककारणम्॥ ४॥
निर्विकल्पं निरालम्बं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
ध्येयं मुमुक्षुभिस्तात देहबन्धविमुक्तये॥ ५॥

तात! मुमुक्षुओंको देहबन्धसे मुक्तिके लिये मेरे निष्कल, सूक्ष्म, वाणीसे परे, अत्यन्त निर्मल, निर्गुण, परम ज्योतिस्वरूप, सर्वव्यापक, एकमात्र कारणरूप, विकल्परहित, आश्रयहीन और सच्चिदानन्दविग्रहवाले स्वरूपका ध्यान करना चाहिये॥ ४-५॥

अहं मतिमतां तात सुमतिः पर्वताधिप।
पृथिव्यां पुण्यगन्धोऽहं रसोऽप्सु शशिनः प्रभा॥ ६॥
तपस्विनां तपश्चास्मि तेजश्चास्मि विभावसोः।
कामरागादिरहितं बलिनां बलमप्यहम्॥ ७॥

तात! मैं बुद्धिमानोंकी सद्बुद्धि हूँ। पर्वतराज! मैं ही पृथ्वीमें पवित्र गन्धके रूपमें विद्यमान हूँ, मैं ही जलमें रसके रूपमें व्याप्त हूँ, चन्द्रमाकी प्रभा मैं ही हूँ, मैं ही तपस्वियोंकी तपस्या हूँ, सूर्यका तेज मैं ही हूँ और बलवान् प्राणियोंका काम-राग आदिसे रहित बल भी मैं ही हूँ॥ ६-७॥

सर्वकर्मसु राजेन्द्र कर्म पुण्यात्मकं तथा।
छन्दसामस्मि गायत्री बीजानां प्रणवोऽस्म्यहम्॥ ८॥

धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि सर्वभूतेषु भूधर।
एवमन्येऽपि ये भावाः सात्त्विका राजसास्तथा॥ ९ ॥
तामसा मत्त उत्पन्ना मदधीनाश्च ते मयि।
नाहं तेषामधीनास्मि कदाचित्पर्वतर्षभ॥ १० ॥

राजेन्द्र! मैं समस्त कर्मोंमें पुण्यात्मक कर्म हूँ, छन्दोंमें गायत्री नामक छन्द हूँ, बीजमन्त्रोंमें प्रणव (ओंकार) हूँ और सभी प्राणियोंमें धर्मानुकूल काम हूँ। भूधर! इसी प्रकार और भी जो सात्त्विक, राजस तथा तामस भाव हैं, वे मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, मेरे अधीन हैं और मुझमें विद्यमान हैं। पर्वतश्रेष्ठ! मैं उनके अधीन कदापि नहीं हूँ॥ ८—१० ॥

एवं सर्वगतं रूपमद्वैतं परमव्ययम्।
न जानन्ति महाराज मोहिता मम मायया॥ ११ ॥
ये भजन्ति च मां भक्त्या मायामेतां तरन्ति ते।
ममैश्वर्यं न जानन्ति ऋगाद्याः श्रुतयः परम्॥ १२ ॥

महाराज! मायासे मोहित हुए लोग मेरे इस सर्वव्यापी, अद्वैत, परम तथा निर्विकार रूपको नहीं जान पाते हैं; किंतु जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं। ऋक् आदि श्रुतियाँ भी मेरे परम ऐश्वर्यको नहीं जानती हैं॥ ११-१२ ॥

सृष्ट्यर्थमात्मनो रूपं मयैव स्वेच्छया पितः।
कृतं द्विधा नगश्रेष्ठ स्त्री पुमानिति भेदतः॥ १३ ॥
शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ १४ ॥
वदन्ति मां महाराज तत्त्वमेवं परात्परम्।

पिताजी! नगश्रेष्ठ! सृष्टिके लिये मैंने ही अपने रूपको स्त्री तथा पुरुष-भेदसे दो भागोंमें विभक्त किया। शिव ही प्रधान पुरुष हैं और

शिवा ही परम शक्ति हैं। महाराज! तत्त्वदर्शी योगिजन मुझे ही शिव-शक्तिसे युक्त ब्रह्म एवं परात्पर तत्त्व कहते हैं॥ १३-१४½ ॥

सृजामि ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम्॥ १५॥
संहरामि महारुद्ररूपेणान्ते निजेच्छया।
दुर्वृत्तशमनार्थाय विष्णुः परमपूरुषः॥ १६॥
भूत्वा जगदिदं कृत्स्नं पालयामि महामते।
अवतीर्य क्षितौ भूयो भूयो रामादिरूपतः॥ १७॥
निहत्य दानवान्पृथ्वीं पालयामि पुनः पुनः।
रूपं शक्त्यात्मकं तात प्रधानं यच्च मे स्मृतम्॥ १८॥
यतस्तया विना पुंसः कार्यं नेहात्मना स्थितम्।

मैं ब्रह्मरूपसे इस चराचर जगत्की सृष्टि करती हूँ, परम पुरुष विष्णु होकर इस सम्पूर्ण विश्वका पालन करती हूँ और अन्तमें अपनी इच्छासे दुराचारियोंके शमनके उद्देश्यसे महारुद्ररूपसे संहार करती हूँ। इसी तरह महामते! मैं राम आदि रूपोंसे पृथ्वीपर बार-बार अवतार लेकर दानवोंका वध करके पुनः-पुनः जगत्का पालन करती हूँ। तात! मेरा शक्त्यात्मक रूप ही प्रधान है; क्योंकि अपने स्वरूपमें स्थित रहता हुआ पुरुष उसके बिना कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है॥ १५—१८½ ॥

रूपाण्येतानि राजेन्द्र तथा काल्यादिकानि च॥ १९॥
स्थूलानि विद्धि सूक्ष्मं च पूर्वमुक्तं तवानघ।
अनभिज्ञाय रूपं तु स्थूलं पर्वतपुङ्गव॥ २०॥
अगम्यं सूक्ष्मरूपं मे यद्दृष्ट्वा मोक्षभाग्भवेत्।
तस्मात्स्थूले हि मे रूपं मुमुक्षुः पूर्वमाश्रयेत्॥ २१॥
क्रियायोगेन तान्येव समभ्यर्च्य विधानतः।
शनैरालोचयेत्सूक्ष्मं रूपं मे परमव्ययम्॥ २२॥

राजेन्द्र! मेरे इन काली आदि रूपोंको स्थूलरूप जानो। निष्पाप!

अपने सूक्ष्मरूपके विषयमें मैं आपसे पहले ही बता चुकी हूँ। पर्वतश्रेष्ठ! मेरे स्थूल रूपका ज्ञान किये बिना उस सूक्ष्मरूपका बोध नहीं किया जा सकता है, जिसका दर्शन करके प्राणी मोक्षका भागी हो जाता है। अतः मोक्षकी कामना करनेवाले प्राणीको पहले मेरे स्थूल रूपका आश्रय लेना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह क्रियायोगके द्वारा विधानपूर्वक मेरे उन स्थूल रूपोंकी उपासना करके ही धीरे-धीरे मेरे शाश्वत परम सूक्ष्म रूपका दर्शन करे॥ १९—२२॥

हिमालय उवाच

मातर्बहुविधं रूपं स्थूलं तव महेश्वरि।
तेषु किं रूपमाश्रित्य सहसा मोक्षभाग्भवेत्॥ २३॥
तन्मे ब्रूहि महादेवि यदि ते मय्यनुग्रहः।
संसारान्मोचय त्वं मां दासोऽस्मि भक्तवत्सले॥ २४॥

हिमालय बोले—माता! आपके स्थूल रूप अनेक प्रकारके हैं। महेश्वरि! उनमें किस रूपका आश्रय लेकर मनुष्य शीघ्र मोक्षका भागी बन सकता है? महादेवि! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो मुझे उसे बताइये। भक्तवत्सले! मैं आपका दास हूँ, अतः इस संसारसे मुझे मुक्त कीजिये॥ २३-२४॥

श्रीपार्वत्युवाच

मया व्याप्तमिदं विश्वं स्थूलरूपेण भूधर।
तत्राराध्यतमा देवीमूर्तिः शीघ्रं विमुक्तिदा॥ २५॥
सापि नानाविधा तत्र महाविद्या महामते।
विमुक्तिदा महाराज तासां नामानि मे शृणु॥ २६॥
महाकाली तथा तारा षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी बगला छिन्ना महात्रिपुरसुन्दरी॥ २७॥

धूमावती च मातङ्गी नृणां मोक्षफलप्रदा।
आसु कुर्वन् परां भक्तिं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ २८॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—भूधर! मेरे स्थूल रूपोंसे यह सम्पूर्ण जगत् ही व्याप्त है, फिर भी शीघ्र मुक्ति प्रदान करनेवाली मेरी देवी-मूर्ति सर्वाधिक आराधनीया है। महामते! वे देवी भी मुक्तिदायिनी '(दस) महाविद्या' नामसे अनेक स्वरूपोंवाली हैं। महाराज! मुझसे उनके नाम सुन लीजिये—महाकाली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला (बगलामुखी), छिन्ना (छिन्नमस्ता), महात्रिपुरसुन्दरी, धूमावती और मातंगी नामोंवाली—ये मनुष्योंको मोक्षफल प्रदान करनेवाली हैं। इनकी परम भक्ति करनेवाला निःसंदेह मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २५—२८॥

आसामन्यतमां तात क्रियायोगेन चाश्रय।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यसि निश्चितम्॥ २९॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
न लभन्ते महात्मानः कदाचिदपि भूधर॥ ३०॥

तात! आप मन और बुद्धिसे मेरे प्रति समर्पित होकर इनमेंसे किसी एकका क्रियायोगके द्वारा आश्रय ग्रहण कीजिये। इससे आप निश्चितरूपसे मुझे प्राप्त कर लेंगे। भूधर! मुझको प्राप्त होकर महात्मालोग अनित्य तथा दुःखत्रयसे परिपूर्ण पुनर्जन्मको कभी नहीं पाते॥ २९-३०॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं मुक्तिदा राजन् भक्तियुक्तस्य योगिनः॥ ३१॥
यस्तु संस्मृत्य मामन्ते प्राणं त्यजति भक्तितः।
सोऽपि संसारदुःखौघैर्बाध्यते न कदाचन॥ ३२॥

अनन्यचेतसो ये मां भजन्ते भक्तिसंयुताः।
तेषां मुक्तिप्रदा नित्यमहमस्मि महामते॥ ३३॥

राजन्! निरन्तर एकनिष्ठ चित्तवाला होकर जो नित्य मेरा स्मरण करता है, उस भक्तिपरायण योगीको मैं मुक्ति प्रदान करती हूँ। भक्तिपूर्वक मेरा स्मरण करते हुए जो अन्तमें प्राणत्याग करता है, वह कभी भी (पुनर्जन्मादि) सांसारिक दुःखसमूहोंसे पीड़ित नहीं होता। महामते! मेरे प्रति अनन्य चित्तसे जो लोग भक्तिपूर्ण होकर नित्य मुझको भजते हैं, उन्हें मैं मोक्ष प्रदान करती हूँ॥ ३१—३३॥

शक्त्यात्मकं हि मे रूपमनायासेन मुक्तिदम्।
समाश्रय महाराज ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ३४॥

महाराज! मेरा वह शक्त्यात्मक रूप बिना किसी श्रमके ही मुक्ति देनेवाला है, इसलिये आप उस रूपका आश्रय लीजिये। इससे आप अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे॥ ३४॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव राजेन्द्र यजन्ते नात्र संशयः॥ ३५॥
अहं सर्वमयी यस्मात्सर्वयज्ञफलप्रदा।
किंतु तेष्वेव ये भक्तास्तेषां मुक्तिः सुदुर्लभा॥ ३६॥

राजेन्द्र! जो लोग श्रद्धासे युक्त होकर भक्तिपूर्वक अन्य देवताओंकी भी उपासना करते हैं, वे भी प्रकारान्तरसे मेरी ही उपासना करते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है। समस्त यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली मैं यद्यपि सर्वव्यापिनी हूँ, फिर भी जो लोग एकमात्र उन्हीं अन्य देवताओंकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, उनकी मुक्ति अत्यन्त दुर्लभ है॥ ३५-३६॥

ततो मामेव शरणं देहबन्धविमुक्तये।
याहि संयतचेतास्त्वं मामेष्यसि न संशयः॥ ३७॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
सर्वं मदर्पणं कृत्वा मोक्ष्यसे कर्मबन्धनात्॥ ३८॥

अतः देह-बन्धनसे मुक्तिके लिये आप अपने मनको नियन्त्रित करके मेरी ही शरणमें जाइये। ऐसा करनेसे आप मुझे प्राप्त कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है। आप जो कुछ करते हैं, खाते हैं, हवन करते हैं और दान करते हैं, वह सब मुझे अर्पण करके आप कर्मबन्धनसे छूट जायँगे॥ ३७-३८॥

ये मां भजन्ति सद्भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।
न च मेऽस्ति प्रियः कश्चिदप्रियोऽपि महामते॥ ३९॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मुच्यते भवबन्धनात्॥ ४०॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शनैस्तरति सोऽपि च।
मयि भक्तिमतां मुक्तिः सुलभा पर्वताधिप॥ ४१॥

जो लोग सच्ची भक्तिसे मेरी आराधना करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें स्थित हूँ। महामते! मेरे लिये कोई भी प्रिय और अप्रिय नहीं है। अत्यन्त दुराचारी रहा हुआ मनुष्य भी यदि अनन्यभावसे मेरी उपासना करने लगता है तो वह भी पापरहित होकर भवबन्धनसे छूट जाता है।* वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और धीरे-धीरे संसार-सागरको पार भी कर जाता है। पर्वतराज! मुझमें भक्ति रखनेवाले प्राणियोंके लिये मुक्ति सुलभ हो जाती है॥ ३९—४१॥

---

* पूर्वकालमें दुराचारपरायण रहनेपर भी यदि सत्संगादिके प्रभावसे उसके चित्तमें पश्चात्तापका उदय हो जाता है और दुराचरणसे निवृत्त होकर उसका जगदम्बाके प्रति अनन्यचित्तताका सम्बन्ध बन जाता है तो उस व्यक्तिके सारे पापोंका प्रक्षालन होकर उसकी मुक्ति असंदिग्धरूपसे हो जाती है।

ततस्त्वं परया भक्त्या मां भजस्व महामते।
अहं त्वां जन्मजलधेस्तारयामि सुनिश्चितम्॥ ४२॥
मन्मना भव मद्याजी मां नमस्कुरु मत्परः।
मामेवैष्यसि संसारदुःखैर्नैव हि बाध्यसे॥ ४३॥

अतः महामते! आप पराभक्तिसे युक्त होकर मेरी आराधना कीजिये। मैं आपको जन्म-मरणरूपी समुद्रसे निश्चितरूपसे पार कर दूँगी। आप मुझमें अनुरक्त मनवाले होइये, मेरे उपासक बनिये, मुझे नमस्कार कीजिये और मेरे परायण होइये। ऐसा करनेसे आप मुझे ही प्राप्त होंगे और सांसारिक कष्ट आपको कभी पीड़ित नहीं कर सकेंगे॥ ४२-४३॥

॥ इति श्रीदेवीपुराणे श्रीभगवतीगीतायां श्रीपार्वती-हिमालयसंवादे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

भगवतीगीता (पार्वतीगीता)-के पाठकी महिमा

श्रीमहादेव उवाच

एवं श्रीपार्वतीवक्त्राद्योगसारं परं मुने।
निशम्य पर्वतश्रेष्ठो जीवन्मुक्तो बभूव ह॥ १॥
सापीयं शैलराजाय योगमुक्त्वा महेश्वरी।
मातृस्तन्यं पपौ बाला प्राकृतेव हि लीलया॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! इस प्रकार श्रीपार्वतीजीके मुखसे श्रेष्ठ योगसारको सुनकर पर्वतश्रेष्ठ हिमालय जीवन्मुक्त हो गये। वे महेश्वरी भी गिरिराजसे योगका वर्णन करके लीलापूर्वक प्राकृत (सामान्य) बच्चीकी भाँति माताका दूध पीने लगीं॥ १-२॥

गिरीन्द्रस्तु महाहर्षादकरोत्सुमहोत्सवम्।
यथा न दृष्टं केनापि श्रुतं वा केनचित्क्वचित्॥ ३॥
षष्ठेऽह्नि षष्ठीं सम्पूज्य सम्प्राप्ते दशमेऽहनि।
पार्वतीत्यकरोन्नाम सान्वयं पर्वताधिपः॥ ४॥

गिरिराज हिमालयने भी अत्यन्त हर्षोल्लासके साथ बड़ा भारी उत्सव किया, जैसा किसीने कहीं भी न तो देखा था और न सुना था। छठें दिन षष्ठीदेवीकी पूजाकर दसवाँ दिन आनेपर पर्वतराज हिमालयने उनका 'पार्वती'—ऐसा सार्थक नाम रखा॥ ३-४॥

एवं त्रिजगतां माता नित्या प्रकृतिरुत्तमा।
सम्भूय मेनकागर्भाद्धिमालयगृहे स्थिता॥ ५॥

इस प्रकार तीनों लोकोंकी जननी नित्यस्वरूपिणी श्रेष्ठ प्रकृति मेनकाके गर्भसे उत्पन्न होकर हिमालयके घरमें रहने लगीं॥ ५॥

हिमालयाय पार्वत्या कथितं योगमुत्तमम्।
यः पठेत्सुलभा मुक्तिस्तस्य नारद जायते॥ ६॥
तुष्टा भवति शर्वाणी नित्यं मङ्गलदायिनी।
जायते च दृढा भक्तिः पार्वत्यां मुनिपुङ्गव॥ ७॥

नारद! जो मनुष्य पार्वतीके द्वारा हिमालयसे कहे गये उत्तम योगका पाठ करता है, उसके लिये मुक्ति सुलभ हो जाती है। मुनिवर! भगवती शर्वाणी उस मनुष्यपर सदा प्रसन्न रहती हैं और देवी पार्वतीके प्रति उसके मनमें दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ ६-७॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः।
पठन् श्रीपार्वतीगीतां जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ ८॥
शरत्काले महाष्टम्यां यः पठेत्समुपोषितः।
रात्रौ जागरितो भूत्वा तस्य पुण्यं ब्रवीमि किम्॥ ९॥
स सर्वदेवपूज्यश्च दुर्गाभक्तिपरायणः।
इन्द्रादयो लोकपालास्तदाज्ञावशवर्तिनः॥ १०॥

स्वयं दैवीकलामेति साक्षाद्देव्याः प्रसादतः।
नश्यन्ति तस्य पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि॥ ११॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतं लभते चिरजीविनम्।
नश्यन्ति रिपवस्तस्य नित्यं प्राप्नोति मङ्गलम्॥ १२॥

अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथिको भक्तिपरायण होकर श्रीपार्वतीगीताका पाठ करनेवाला मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। शरत्कालमें महाष्टमी तिथिको उपवास करके तथा रातभर जागरण करके जो मनुष्य इसका पाठ करता है, उसके पुण्यका वर्णन मैं क्या करूँ? दुर्गा-भक्तिपरायण वह मनुष्य सभी देवताओंका पूज्य हो जाता है और इन्द्र आदि लोकपाल उसकी आज्ञाके अधीन हो जाते हैं। वह साक्षात् भगवतीकी कृपासे दैवीकलाको स्वयं प्राप्त हो जाता है और उसके ब्रह्महत्या आदि पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वह सर्वगुणसम्पन्न तथा दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त करता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं और वह नित्य कल्याणकी प्राप्ति करता है॥ ८—१२॥

अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स दुर्गातुल्यतामियात्॥ १३॥
निशीथे पठते यस्तु बिल्ववृक्षस्य सन्निधौ।
तस्य संवत्सराद्दुर्गा स्वयं प्रत्यक्षमेति वै॥ १४॥

अमावास्या तिथिके आनेपर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस श्रीपार्वतीगीताका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर दुर्गातुल्य हो जाता है। जो बेलके वृक्षकी संनिधिमें बैठकर अर्धरात्रिमें इसका पाठ करता है; उसे एक वर्षमें ही दुर्गा साक्षात् दर्शन देती हैं॥ १३-१४॥

किमत्र बहुनोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
अस्याः पाठसमं पुण्यं नास्त्येव पृथिवीतले॥ १५॥

नारद! इसके विषयमें अधिक क्या कहा जाय? तत्त्वकी बात

यह है कि पृथ्वीतलपर इस (श्रीपार्वतीगीता)-के पाठके समान कोई भी पुण्य नहीं है॥ १५॥

तपसां यज्ञदानादिकर्मणामिह विद्यते।
फलस्य संख्या नैतस्य विद्यते मुनिपुङ्गव॥ १६॥

मुनिश्रेष्ठ! इस लोकमें तप, यज्ञ-दान आदि कर्मोंके फल तो परिमित हैं, किंतु इस (भगवतीगीता)-के पाठके फलकी कोई सीमा नहीं है॥ १६॥

॥ इति श्रीदेवीपुराणे भगवतीगीतायां श्रीमहादेव-नारदसंवादे पञ्चमोऽध्याय:॥ ५॥

॥ भगवतीगीता सम्पूर्णा॥